''कृषि श्रमिक : समस्याएँ एवं निदान''

डॉ० शांति कुमारी*

ब्रिटिश काल में कुटीर उद्योग–धन्धों का नष्ट होना, ग्रामीण ऋणग्रस्तता तथा भूमि को गरवी आदि के कारण कृषि श्रमिकों की संख्या में वृद्धि होती चली गई।

कृषि श्रमिकों में जो वृद्धि हुई वह भी देश के विभिन्न क्षेत्रों में समान नहीं थी। कृषि श्रमिकों की सबसे अधिक संख्या बिहार में है। इसके पश्चात् क्रमशः आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा महाराष्ट्र का स्थान है।

कृषि श्रमिकों के वृद्धि के कारण
(Development of Agricultural Labourer)

ब्रिटिश काल में श्रमिकों की संख्या में वृद्धि होने के निम्न कारण थे–

(1) जनसंख्या वृद्धि (Increase in Population)- स्वतन्त्रता के पश्चात् जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई जिसके फलस्वरूप श्रमिकों की वृद्धि हो गई। 195 में भारत की जनसंख्या 36.1 करोड़ थी वह बढ़कर 1961 में 43.9 करोड़ 197 में 54.8, करोड़ 1981 में 68.5 करोड़ हो गयी। एक अनुमान के अनुसार 198 में भारत में 80.6 करोड़ जनसंख्या का अनुमान है।

(2) कुटीर एवं लघु उद्योगों का पतन (Decay of Small and Cottag Industries)- भारत में कुटीर उद्योग–धन्धों का पतन होने के कारण ग्रामीण लोग बेकार हो गये और जो लोग इन धन्धें पर निर्भर करते थे, उनका अतिरिक्त भार कृषि पर आ गया। कुटीर धन्धों के पतन का मुख्य कारण ब्रिटिश सरकार की आयात नीति थी जिसके अन्तर्गत इंगलैंड का तैयार माल भारतीय बाजारों बिकने लगा। इस प्रकार इन पर लगे श्रमिक कृषि व्यवसाय में स्थानान्तरित हो गये।

(3) कृषि का वाणिज्यीकरण (Commercialisation of Agriculture) - कृषि का वाणिज्यकरण होन के कारण कृषि उत्पादन विश्व बाजार में जाने लगा। एक तरु मानसून की अनिश्चितता तथा दूसरी तरफ विश्व बाजार उनके उत्पादनों की कीमतों में उच्चावचन कृषक के सामने समस्या पैदा करती है अतः वह अपने जीविकोपार्जन के लिये कृषि श्रमिक के रूप में कार्य करने लगा।

(4) ग्रामीण ऋणग्रस्तता Rural Indebtedness)- ग्रामीण ऋणग्रस्तता के कारण भी किसान अपनी भूमि साहूकार एवं महाजनों को विक्रय करते चले गये। इस प्रकार कृषक भूमिहीन हो गया और वह कृषि श्रमिक के रूप में कार्य करने के लिए मजबूर हो गया।

(5) ब्रिटिश सरकार की भू–राजस्व नीति (Land Revenue Policy of British Govt.)- ब्रिटिश सरकार की भू–राजस्व नीति भी कृषि श्रमिकों की संख्या बढ़ाने में जिम्मेदार रही है। उदाहरणार्थ, देश के कई अनुसूचित क्षेत्रों में यह परम्परा थी कि गाँव की सम्पूर्ण भूमि गाँव के मुखिया के अधीन होती थी जिस पर व्यक्तिगत स्वामित्व न होकर सम्पूर्ण समाज का स्वामित्व होता था, किन्तु सरकार की भूराजस्व नीति के अनुसार भूमि पर स्वामित्व सम्पूर्ण समाज का न होकर कुछ ही व्यक्तियों का हो सकता है। अतः भूमि साहूकारों ने कृषकों का शोषण करना शुरू कर दिया और बहुत से लोग भूमि का स्वामित्व छोड़कर कृषि श्रमिक बन गये।

(6) कृषि पर जनसंख के दबाव में वृद्धि (More Impact of Population on Agriculture)- कृषि श्रमिकों में निरन्तर वृद्धि होने का यह भी कारण है कि जनसंख का कृषि पर अत्यधिक भार होने से कृषि भूमि का उपविभाजन तथा अपखण्डन होता रहा है तथा बहुत से कृषक मजबूर होकर समय–समय पर मजदूरी करने लगे।

(7) अनाथिक स्त्रोत (Non.economical holdings)–भारत में कृषि जोतों का आकार बहुत छोटा है। खेतों के छोटे होने के कारण कृषक को पर्याप्त आय प्राप्त नहीं हो पाती है जिसके कारण वह जीवकोपार्जन करने के लिये अन्यत्र कृषि कार्य करता है।

(8) गैर–कृषि क्षेत्र में रोजगार के अवसरों की कमी (Lack of Employment Opportunities in Non-Agriculture Sector) भारत में गैर–कृषिगत क्षेत्र जैसे उद्योग, व्यापार एवं अन्य सेवाओं का इतना विकास नहीं हो पाया है कि वे भूमिहीन कृषकों को कार्य दे सकें। इसके अलावा ज्यादातर ग्रामीण श्रमिक अपने घर से बाहर कार्य करना पसन्द नहीं करते हैं। इस प्रकार कृषि श्रमिकों की संख्या बढ़ती जा रही है।

कृषि श्रमिकों की समस्यायें
(Problems of Agricultural Labourers)

कृषि श्रमिकों को निम्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है–

(1) मौसमी रोजगार (Seaonal Employment)- कृषि श्रमिकों को मौसमी बेरोजगारी का सामना करना पड़ता है। फसलों की निराई एवं फसल कटने के समय कृषि श्रमिकों को रोजगार मिल जाता है और शेष समय बेरोजगार बने रहते हैं। द्वितीय कृषि जाँच समिति के अनुसार औसतन एक अस्थायी पुरुष को 197 दिन कार्य मिलता है तथा शेष बेकार रहते हैं या अपने निजी कार्य में संलग्न रहते हैं। बाल श्रमिकों एवं स्त्री श्रमिकों को क्रमशः 204 और 241 दिन ही रोजगार मिलता है।

(2) ऋणग्रस्तता (Indebtedness)- कृषि श्रमिकों को इतनी निम्न मजदूरी मिलती है कि वह अपना पेट–पालन ही कर पता है। शेष कार्य उधार लेकर चलाता है। द्वितीय श्रम जाँच समिति के अनुसार प्रति कृषि श्रमिक परिवार पर लगभग 148 रुपये ऋण भार था।

(3) कार्य के अनियमित घण्टे (Irregular Working Hours) -कृषि श्रमिकों के कार्य के घण्टे अनिश्चित होते हैं जो स्थान ऋण व फसलों की विभिन्नता के अनुसार

***सम० ए० पी–एच० डी० (समाजशास्त्र)**

बदलते रहते हैं। औसतन कृषि श्रमिक 10 से 14 घण्टे तक कार्य करता है।

(4) मजदूरी का निम्न स्तर (Low wage Level) - इन श्रमिकों की मजदूरी बहुम कम होती है जिसके कारण उनका जीवन स्तर घटिया होता है। स्वतन्त्रता से पूर्व तो कृषि श्रमिक की दैनिक मजदूरी 2 रु से 2.50 रुपये के मध्य थी। निम्न मजदूरी दर श्रमिकों की कार्यक्षमता पर बुरा प्रभाव डालती है।

(5) निम्न समाजिक स्तर (Low Social Organisation) –चूँकि कृषि श्रमिकों का व्यवसाय नियमित ;च्मतउंदमदजद्ध नहीं होता है; अतः वे संगठित नहीं हो पातें हैं। संगठन के अभाव में उनका शोषण होता रहता है।

(6) बेबार श्रम (Forced Labour) – भारत के लगभग सभी क्षेत्रों में श्रमिकों से दबाव में कार्य कराया जाता है। प्रायः साहूकार एवं महाजन श्रमिकों को कम ब्याज पर ऋण दे देते हैं जिसके बदले में नाम मात्र की मजदूरी देकर उनका शोषण करते हैं।

(7) आवास की समस्या (Houainf Peovlwm) - भूमिहीन कृषि श्रमिकों को घर की समस्या होती है, क्योंकि प्रायः इनका अपना निजी निवास नही होता है। सामान्यतया के लोग भूमिपतियों की अनुमति से उनकी बेकार भूमि पर झौंपड़ी बनाकर रहते हैं।

(8) सामाजिक सुरक्षा का अभाव (Lack of Social Security) -कृषि श्रमिकों को शिक्षा एवं चिकित्सा की तो कोई सुविधा नहीं है बल्कि कृषि कार्य में उनके साथ कोई दुर्घटना हो जाये तो भविष्य में उनके परिवार का पालन–पोषण होना ही दुर्लभ हो जाये। वे कितनी भी मेहनत से कृषि कार्य करें किनतु यदि उनके साथ कोई दुघटना हो जाये तो कोई भूस्वासी देख–भाल नहीं करता है।

(9) सहायक धन्धों की कमी –गाँवों में सहायक धन्धों की कमी होती है, अतः बाढ़, अकाल तथा अन्य प्राकृतिक विपदा के कारण फसल नष्ट होने पर कृषि श्रमिकों का जीवन निर्वाह भी कठिन हो जाता है।

कृषि श्रमिकों की दशा सुधारने के उपाय

(Suggestions to solve the problems of Agricultural Labourers)

भारतीय कृषि श्रमिकों की दशा सुधारने के लिए निम्न सुझाव प्रस्तुत हैं–

(1) कुटीर उद्योगों का विकास (Establish the Cottage Industries)- कृषि श्रमिकों की दशा में सुधार के लिए आवश्यक है कि देश में कुटीर धन्धों का विकास किया जाये जो कृषि पर आधारित हों। ग्रामीण क्षेत्रों में इन धन्धों के विकास से श्रमिक अतिरिक्त समय में इन धन्धों में कार्य करके अपनी जीविकोपार्जन बढ़ा सकेंगे तथा साथ ही कृषि पर भार कम किया जा सकेगा।

(2) न्यूनतम मजदूरी निश्चित करना (Fix the Minimum Wages) - सरकार को चाहिए कि औद्योगिक श्रमिकों के भाँति कृषि श्रमिकों की भी एक न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर देनी चाहिए। इसके लिए सरकार को अधिनियम पारित करना चाहिये।

(3) कार्य के घण्टे (Working Hours) - कृषि श्रमिकों को शोषण से बचाने के लिये औद्योगिक श्रमिकों की भाँति काम के घण्टे निश्चित कर देने चाहिये।

(4) दास प्राप्ति का अन्त (Slavery Abolition) - देश में जो कृषि श्रमिक बंधवा मजदूर के रूप में भूस्वामी के यहाँ कार्यरत हैं, उनको उस शोषण से छुटकारा दिलाया जाये। इसके लिये सरकार को कारगर कदम उठाने होंगे।

(5) गृह व्यवस्था (Housing Facilities) - कृष श्रमिकों के लिए एक स्थायी निवास की व्यवस्था की जानी चाहिए। इसके लिये आवश्यक है कि सरकार उन्हें ग्रामीण अंचलों में कम से कम बसने के लिए मुत में एक भूमि का टुकड़ा प्रदान कर उन पर कम लागत पर घरों का निर्माण करें। इसके लिए सरकार ग्राम पंचायतों का सहयोग ले सकती है। भूमि–विहीन श्रमिकों के लिये पुनर्वास योजनायें बनाई जाये।

(6) साख सुविधायें (Credit Facilities) - इन श्रमिकों को अतिरिक्त व्यवसाय शुरू करने के लिए सरकार द्वारा अनुदान में तथा साथ में वित्तीय संस्थाओं द्वारा कम ब्याज दर पर दीर्घकालीन ऋण प्रदान किये जायें।

(7) ऋणग्रस्तता से मुक्ति (Free From Indebtedness) - कृषि श्रमिकों को ऋणों से मुक्ति देने के लिये सर्वप्रथम साहूकारों एवं महाजनों पर नियन्त्रण करना आवश्यक है। पैतृक ऋणों को कानून द्वारा समाप्त करना चाहिये। ऋणों के उपयोग पर उचित नियन्त्रण रखने की आवश्यकता है।

(8) भूमि पर पुनः स्थापना (Re0estalishment on Land)- कृषि श्रमिकों की दशा सुधाने के लिए उन्हें भूमि पर पुनः स्थापित करने की आवययकता है। बंजर भूमि को खेती योग्य बनाकर तथा कृषि जोत की उच्चतम सीमा निर्धारण करके कृषि श्रमिकों को पुनः भूमि पर स्थापित किया जा सकता है।

(9) सामाजिक सुरक्षा (Social Security) - कृषि श्रमिकों की दशा सुधारने के लिए सामाजिक बीमें के लाभो की व्यवस्था करना नितांत वांछनीय है, ताकि श्रमिकों की असहाय दशा में उनके हितों की रक्षा की जा सके।

(10) सहकारी ग्राम प्रबन्ध (Co-operative Village Management)- ग्रामीण समाज में वर्ग भेद समाप्त करने के लिये आवश्यक है कि सहकारी ग्राम–प्रबन्ध की स्थापना की जाये ताकि सम्पूर्ण ग्राम समाज के हित को ध्यान में रखते हुए गॉव की भूमि और साधनो का समुचित विकास एवं सदुपयोग किया जा सके।

संदर्भ सूची :

1. Barden Power : Land System of British India, Val.I (Calcutta), 1982,
2. Dantwala, M.L. : Poverty in India: Then and Now, Macmiuan company or India Ltd., Delhi, 1973.
3. Hadimani, R.N.: Jle Palitics or Poverty, Ashish philishing House, New Delhi, 1984.
4. दमन चन्द्र मिश्रः खेतिहार मजदूराँ की सामाजिक, आर्थिक दशा सत्यम पब्लिशिंग हाउस, उत्तम नगर नई दिल्लीए 2008.